स्वातंत्र्योत्तर काल के कानूनी संशोधनों में महिला आंदोलनों की भूमिका: तथ्य एवं प्रश्न

Dr. Usha Kiran Tiwari, Associate Professor & Head, Department of Sociology, B. M. Ruia Girls' College, Mumbai

---

Abstract

समय परिवर्तन के साथ – साथ न्याय व्यवस्था में संशोधन आना भी स्वाभाविक है। किन्तु जब यह संशोधन बार-बार समाज के एक विशिष्ट वर्ग द्वारा प्रेरित हो तो उस पर मनन- चिंतन और विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, विशेष रूप से यौनिक हिंसा किसी भी पितृसत्तात्मक समाज के लिए कोई नई बात नहीं है। 1975 के बाद के अधिकांश कानूनों में यह संशोधन महिलाओं से सम्बंधित किसी न किसी खतरनाक घटना के घटने, उसके प्रकाश में आने और महिलाओं द्वारा उसके सम्बन्ध में आवाज उठाने अथवा आंदोलन करने के बाद ही हुआ है। प्रस्तुत शोधपत्र में ऐसी ही कुछ घटनाओं, उसके बाद हुए आंदोलनों तथा संशोधित कानूनों का विश्लेषण किया गया है। प्रदत्तों के द्वितीयक श्रोतों का उपयोग किया गया है।

Key Words-
महिला, समाज, हिंसा, कानून, परिवर्तन

प्रस्तावना

उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में भारत में महिला अधिकारों से सम्बंधित अनेक आंदोलन हुए हैं, किन्तु वे सभी पुरुषों द्वारा प्रेरित एवं प्रोत्साहित थे। 1947 के पूर्व की महिला आंदोलनकारियों में से अधिकांश महिलाएं यथा- कैप्टन लक्ष्मीबाई सहगल, सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गाँधी इत्यादि स्वतंत्रता आंदोलन से जुडी हुई थीं, जो कि अत्यंत स्वाभाविक भी था, क्योंकि परतंत्र भारत में आजादी सर्वप्रथम प्राथमिकता थी। किन्तु साथ ही साथ भारतीय समाज को कुरीतियों से मुक्ति दिलाना भी उतना ही आवश्यक था। इन महिलाओं में सर्वप्रथम राजमाता जिजाऊ, सावित्रीबाई फुले, रमाबाई रानाडे, पंडिता रमाबाई इत्यादि का नाम आता है। अनेक महिला आंदोलनकारी ऐसी भी थीं जो आजादी के आंदोलन में भाग लेने के साथ- साथ समाज को कुरीतियों से मुक्ति दिलाने में भी जुटी हुई थीं। देश की आजादी के साथ-साथ भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त बाल -विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध, स्त्री शिक्षा पर प्रतिबन्ध आदि कुरीतियों से एक सीमा तक मुक्ति मिली। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि स्त्रियों के घर के बाहर कदम रखने के साथ ही अनेक नई - नई समस्याएं प्रगट होने लगीं, क्योंकि अधिकांश पुरुषों की सामंतवादी सोच में कोई परिवर्तन नहीं आया था, जो स्त्रियों को व्यक्ति नहीं वस्तु समझता था। भारतीय स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ अपने सीमित दायरे से बाहर निकलकर प्रगति की ओर बढ़ने लगीं, किन्तु पुरुषों की सोच में कोई परिवर्तन न आने के परिणामस्वरूप यह हुआ कि ग्रामीण एवं नगरीय दोनों क्षेत्रों में घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर हिंसा और बलात्कार के मामले बढ़ने लगे।

1975 के बाद भारत में महिला अधिकारों अथवा लैंगिक हिंसा से सम्बंधित जो आंदोलन हुए, उनमें से अधिकांश महिलाओं द्वारा प्रेरित एवं प्रोत्साहित थे। स्पष्ट परिलक्षित होता है कि 1947 में देश को आज़ादी मिलने के बाद स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की जिस पीढ़ी ने अपनी शिक्षा प्रारम्भ की प्राप्त की, वह पीढ़ी 1970-80 का दशक आते - आते स्नातक, परास्नातक या उच्च शिक्षित अथवा आत्मनिर्भर हो चुकी थी। इन आत्मनिर्भर महिलाओं की संख्या वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ती ही जा रही थी, जिन्होंने महिला आन्दोलनों में अपना सक्रिय योगदान दिया। स्त्रियों की यही शिक्षित पीढ़ी महिलाओं के साथ हुए प्रत्येक अत्याचार, अनाचार का उत्तर मांगने में सक्षम हो पाई और समाज के प्रबुद्ध वर्ग ने भी उनका साथ दिया, या कहा जा सकता है कि देना पड़ा। शायद इसीलिए महिला - हिंसा से सम्बंधित महत्वपूर्ण कानूनों का निर्माण अथवा संशोधन 1975 के बाद ही देखने को मिलता है।

According to Jo Freeman,

The need for any movement to develop "correct consciousness" has long been known……This experience is both irreversible and contagious. Once women have gone through such a resocialisation, their views of themselves and the world are never the same again even if they stop participating actively in the movement. Those who do drop out rarely do so without spreading feminist ideas among their own friends and colleagues. All who undergo

consciousness-raising feel compelled themselves to seek out other women with whom to share the experience.”

स्पष्ट है कि जो महिलाएं शिक्षित हुईं और पुनर्समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजरीं, उन्हें जागरूक रहने के लिए उनका नौकरी या व्यवसाय करना आवश्यक नहीं रहा और साथ ही उनके आसपास की शिक्षित -अशिक्षित, जागरूक- गैर जागरूक सभी महिलाएं आवश्यकता पड़ने पर आंदोलन में भाग लेने के लिए जाने-अनजाने में प्रशिक्षित हो गईं। यहाँ यह याद रखना आवश्यक है कि कोई भी आंदोलन चेतन-अचेतन दोनों स्तरों पर होता है। चेतन अवस्था में आने से पहले यह अचेतन स्तर पर कई सोपानों से गुजर चुका होता है। इसीलिए जब भी कोई ऐसी घटना घटी, जिसने स्त्रियों के मान-सम्मान को ठेस पहुंचाई और जनसंचार माध्यमों की बहुलता के कारण वह देश के कोने-कोने तक पहुंची, पहले से ही अचेतन स्तर पर जागृत महिलाओं ने आंदोलन का प्रारम्भ कर दिया।

तथ्य विश्लेषण

भारतीय समाज में महिला -हिंसा से सम्बंधित कमजोर कानूनों का कारण समाज में बदनामी के डर से पुलिस स्टेशन में केस रजिस्टर न करना और पीड़ित महिला की पहचान उजागर न होने देना एक आम बात थी। किन्तु 1972 में हुए मथुरा रेप केस और विशेषतः उसके बाद 1979 में आये सुप्रीम कोर्ट के आदेश ने अनेक प्रश्नचिन्ह खड़े कर दिए। दिल्ली विश्वविद्यालय की तीन और पुणे विश्वविद्यालय की एक महिला प्रोफ़ेसर के खुले पत्र ने इस मुद्दे को जीवंत कर दिया, पूरे देश में आंदोलन और वाद-विवाद होने लगे। जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज और न्याय व्यवस्था को महिलाओं के विरुद्ध हुए अपराधों को गंभीरता से लेने पर बाध्य होना पड़ा। तदनन्तर बलात्कार सम्बन्धी भारतीय कानूनों में संशोधन के पीछे इस साहसिक कदम की महत्पूर्ण भूमिका रही।

1987 में हुए रूपकंवर केस के बाद भी पूरे देश में हुए अलग-अलग प्रकार के आन्दोलनों में नारीवादी आन्दोलनों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। एक तरफ एक विशिष्ट जाति का पुरुष समुदाय इस पूरे मामले का महिममण्डन करने में व्यस्त था। राजनीतिक दल अपने -अपने फायदे लेने में लगे हुए थे। वहीं नारीवादी संगठन इसकी कठोर शब्दों में निंदा कर रहे थे। जिस कुरीति का अनेक प्रयासों के बाद राजा राम मोहन रॉय एवं अन्य समाज सुधारकों के प्रयासों से निर्मूलन करने का प्रयास किया गया था और इस सम्बन्ध में "सती प्रथा निरोधक कानून" भी मौजूद था, अनेक दशकों बाद पुनः ऐसी घटना का घटित होना तो शर्मनाक था ही, किन्तु उससे भी अधिक शर्मनाक था, उस घटना को घटित होने में सहायता करना, उसका महिमामंडन करना और बाद में 'चुनरी महोत्सव' मनाना।

इस सम्बन्ध में राधा कुमार लिखती हैं कि, “चाहे इन कारणों से या कि सती के समर्थन में कोई अन्य जन - अभियान न चलाये जाने से, १९८७ में रूपकंवर की मृत्यु तक यह मुद्दा धुंधलाया ही रहा। ऐसा माना जाता है कि भारत में सती की हर वर्ष औसतन एक घटना जरूर होती थी, फिर क्या कारण था कि जितना उग्र रूप इस घटना ने धारण किया उतना इससे पूर्व की अन्य घटनाओं ने नहीं। .... रूपकंवर की मृत्यु, जिसे किसी ने नहीं रोका, सती के समर्थन एवं विरोध के व्यापक आंदोलन का कारण बनी। ऐसा तभी हुआ जब इस मुद्दे को लेकर अभियान चलाया गया और साबित किया गया कि रूपकंवर का मामला अन्य घटनाओं से भिन्न है।”

महिलाओं ने सिर्फ नारीवादी मुद्दों पर आंदोलन किये हों, ऐसा बिलकुल भी नहीं है। 1973 में प्रारम्भ हुए चिपको आंदोलन का नेतृत्व भी गौरा देवी नामक महिला ने ही किया था, जो आगे चलकर एक प्रमुख पर्यावरणवादी आंदोलन बना। उत्तराखंड के जिस गांव से यह आंदोलन प्रारम्भ हुआ था, वहॉ के सारे पुरुष अपने -अपने काम के लिए दिन भर गांव से बाहर रहते थे। ऐसे में महिलाओं ने ही पेड़ों से चिपककर और दिन- रात उनकी रखवाली करकर अपने पर्यावरण की रक्षा की। ज्ञातव्य है कि ये वो महिलाएं थीं, जो बहुत अधिक पढ़ी- लिखी नहीं थीं या अशिक्षित थीं। फिर भी उन्हें अपने पर्यावरण के प्रति जागरूकता थी और साथ ही अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने के मूल अधिकार के प्रति भी। तभी जाकर वे आंदोलन की शुरुआत करने और उसे लम्बे समय तक चलाने में कामयाब हो पाईं।

अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाना और पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे रवैये पर प्रश्न करना भारतीय नारियों के लिए कोई नई बात नहीं है। महाभारत काल में द्रौपदी, मध्यकाल में मीरा और जगद्गुरु शंकराचार्य को अपनी बुद्धिमत्ता व वाकपटुता से पराजित करने वाली विदुषी भारती, जो आचार्य मंडन मिश्र की पत्नी भी थीं, की सत्य कहानियां भारतीय समाज के जन-जन में व्याप्त हैं। ये तो वे उदाहरण हैं जो इतिहास के पन्नों में जीवित हैं। साधारण नारियों के विद्रोह की कहानियां तो किसी को ज्ञात भी नहीं। लोकगीतों और लोककथाओं में उनके कुछ चुनिंदा प्रमाण मिलते हैं। यह अलग बात है कि इतिहास की धूल ने इन आदर्श उदाहरणों को ढक दिया है।

राजबाला सिंह एवं मधुबाला सिंह लिखती हैं, "महिला आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है आम औरत से रिश्ता और जुड़ाव। अंततः आंदोलन की नींव उन लाखों-करोडों आम औरतों ने डाली है जिन्होंने सदियों से सवाल उठाये हैं, असंतोष जताया है, विरोध के स्वर उठाये हैं और असहयोग की शुरुआत की है। रूढ़िवादी इतिहासकार भले ही इसे अनदेखा कर दें, पर वास्तविकता यह है कि महिला आंदोलन की जड़ें, महिलाओं के रोजमर्रा के जीवन से जुडी हैं।"
इस प्रकार महिलाओं से सम्बंधित अनेक कानूनों एवं अन्य मुद्दों से सम्बंधित कानूनों में भी संशोधन के पीछे सामाजिक आन्दोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिनमें से अधिकांश का प्रारम्भ महिलाओं ने ही किया था। जनसंचार माध्यमों यथा - मुद्रण माध्यम एवं तकनीकि माध्यम दोनों की ही इन आन्दोलनों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका रही। क्योंकि आंदोलनकारी महिलाओं की आवाज को जन -जन तक पहुँचाने का कार्य जनसंचार माध्यमों ने ही किया। टेलीविजन के परदे पर प्रसारित होने वाले जीवंत वाद- विवाद ने घर-घर में इन मुद्दों पर बातचीत शुरू की जो आगे चलकर एक मजबूत राय बनने में सहायक सिद्ध हुई।

निष्कर्ष

राजबाला सिंह एवं मधुबाला सिंह ने अपनी पुस्तक में भारतीय महिला आन्दोलनों का बहुत सही विश्लेषण किया है, और कहा है कि "एक बात तो स्पष्ट है कि महिला आन्दोलन की शुरुआत कोई अभी हाल में नहीं हुई है, और न दिल्ली और मुंबई की सड़कों पर हुई है। इसकी शुरुआत हजारों स्थानों पर हजारों तरह से हुई है। इसकी तुलना उस नदी से नहीं की जा सकती जो एक स्पष्ट श्रोत से शुरू होकर एक स्पष्ट जगह समाप्त हो जाती है वरन इसमें सैकडों धाराएं मिलती हैं जो स्वयं हजारों धाराओं और झरनों से मिलकर बनी है"

ऐसा प्रतीत होता है कि समय के साथ-साथ पूर्व की अपेक्षा वर्तमान में घरेलू हिंसा में कुछ कमी अवश्य आई है, पर कार्यस्थल पर हिंसा, यौनिक हिंसा एवं सार्वजानिक स्थलों पर महिलाओं से सम्बंधित अपराधों में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है। इन अपराधों की बढ़ती संख्या पर नियंत्रण करने के लिए न सिर्फ अपराधियों को कठोर दंड देना आवश्यक है, वरन इन कानूनों से सम्बंधित जागरूकता का प्रसार भी अत्यंत आवश्यक है। नैतिक नियमों का पाठ पढ़ाते वक्त सिर्फ स्त्रियों को ध्यान में रखने की दोहरी नीति को समाप्त करना अत्यंत आवश्यक है। पुरुष का चरित्र गढ़ने में भी समाज को उतनी ही मेहनत करनी चाहिए, जितनी स्त्रियों के चरित्र - निर्माण में की जाती है। किसी भी लैंगिक हिंसा का शिकार होने पर पीड़ित स्त्री का चारित्रिक इतिहास ढूंढने के बजाय अपराधी पुरुष के अपराध की गंभीरता पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। यहां तक कि किसी पुरुष की गलती की सजा उससे सम्बंधित महिला को देने की प्रवृति पर भी कठोरता से अंकुश लगाने की आवश्यकता है। यद्यपि यह प्रथा अत्यंत प्राचीन एवं समाज की रग -रग में व्याप्त है। लोक प्रचलित सभी गालियों में महिला सम्बन्धी कुवचनों का प्रयोग इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। लैंगिक हिंसा से सम्बंधित महत्वपूर्ण अपराधिक मामले सिर्फ कानून की कक्षाओं में न पढ़ाकर उन्हें उच्च शिक्षण संस्थाओं के समाज विज्ञान, विज्ञान एवं वाणिज्य इत्यादि सभी विषयों के पाठयक्रम में स्थान मिलना चाहिए और उन पर अध्ययन, मनन -चिंतन के साथ-साथ अनिवार्य रूप से वाद- विवाद भी होना चाहिए, जिससे युवा पीढ़ी में समाजोचित एवं तार्किक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया जा सके। इन सभी कार्यों में जनसंचार माध्यमों की भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसका उन्हें ईमानदारी से निर्वहन करना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Desai, Neera & Patel, Vibhuti. (1985). Indian Women: Change and Challenge. Popular Prakashan. Bombay.
2. Freeman, Jo. (Edited) (1975). WOMEN: A Feminist Perspective. State University of New York College. Mayfield Publishing Company. California
3. Iyer, Padma. (2007). Women and Social Revolution. Pointer Publisher. Jaipur. India.
4. Rao, M.S.A. (1974). Urban Sociology in India. W.H. Patwardhan Orient Longman Ltd. New Delhi.
5. कुमार, राधा. (2009). स्त्री संघर्ष का इतिहास. वाणी प्रकाशन. नई दिल्ली.
6. सिंह, वी. एन. एवं सिंह, जनमेजय. (2005). भारत में सामाजिक आंदोलन. रावत पब्लिकेशंस. जयपुर. नई दिल्ली.
7. सिंह, राजबाला एवं सिंह, मधुबाला. (2006). भारत में महिलाएं. शीतल प्रिंटर्स. जयपुर.